ईशोपनिषद

(कविता में)

।। ओ३म् ।।

ईशोपनिषद्

कविता में

कविता रचना

क्षेम चन्द महता

संवत २०३३ प्रथमबार १००० मुल्य ६०

॥ समर्पण ॥

गुरुवर स्वर्गीय महात्मा प्रभु अश्रित जी महाराज
(महात्मा टेक चन्द जी), संस्थापक वैदिक भक्ति
साधन आश्रम रोहतक

एवं

स्वर्गीया श्रीमती सत्य प्रिया जी
संस्थापिका महिला आर्य समाज निज्जामुद्दीन नई दिल्ली
की पुण्य स्मृति में जिन्होंने स्थान स्थान पर
और विशेषकर निज़ामुद्दीन में अनेक बृहद् यज्ञ
आयोजित करके वेद प्रचार और नारी उत्थान का
महान कार्य किया।

प्राक्कथन

भारतवर्ष के प्राचीन अध्यात्मिक साहित्य में उपनिषदों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उपनिषद् शब्द दो शब्दों से बना है 'उप' का अर्थ है निकट और 'निषद्' बैठने को कहते हैं। यह वह ज्ञान है जिसके द्वारा मनुष्य परमेश्वर के तथा अपने स्वरूप को समझकर प्रभु से निकटता स्थापित कर सकता है जैसे शिष्य गुरु के निकट बैठकर यह ज्ञान प्राप्त करता है। कुल 108 उपनिषद् हैं जिनमें 10 प्रसिद्ध हैं। पूर्व काल से अनेक विद्वानों, सन्यासियों, तथा विचारकों ने इनकी व्याख्या की। उपनिपदों की कथ:, रोचक और मन को शान्ति देने वाली होती है। स्वर्गीय श्री स्वामी सत्यानन्दजी प्राय: उपनिषदों की कथा किया करते थे, उनकी कथा को सुनने हजारों की संख्या में नरनारी आते थे और अगाध प्रेम और श्रद्धा से उपनिषदों के रहस्य को स्वामी जी की मधुर वाणी से सुनकर मस्त हो जाते थे।

मेरे परम स्नेही खेमे चन्द जी दृढ़ आर्य और स्वाध्यायशील है। लगभग चौबीस वर्ष से आर्य समाज निजामुद्दीन की सेवा कर रहे हैं। वह इस समाज के कई वर्ष प्रधान तथा मन्त्री पद पर रहे। उनका कोई पद हो या नहीं वह हृदय से समाज तथा निजामुद्दीन ऐसोसीएशन की सेवा करते रहे हैं। इससे पूर्व लाहौर में कई वर्ष डी० ए० वी० हाई स्कूल में अध्यापक तथा छात्रालय के अध्यक्ष भी रहे हैं। आप वेद मन्त्रों तथा उपनिषदों और दूसरे धर्म ग्रन्थों को जनसाधारण के लिए सरल कविता में लिखते हैं। मेरे विशेष आग्रह पर कि वह इन सबको पुस्तकों का रूप दें ताकि अधिक से अधिक धर्म प्रेमी इनका लाभ उठा सकें उन्होंने ईश उपनिषद् को सरल भाषा तथा कविता में लिखा है। ईश में उपनिषद् यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के मन्त्र हैं, इसमें गीता का सार भी है कि संसार में मनुष्य निष्काम कर्म करता हुआ कर्म बन्धनों में लिप्त न हो। आशा है धर्म प्रेमी जन इसका पूरा लाभ उठायेंगे।

नवनीत लाल

चैत्र प्रतिपदा सम्वत २०३३ (एडवोकेट सुप्रीमकोर्ट)

निवेदन

अध्यात्म विद्या के लिए उपनिषद् अमृत का स्रोत हैं। ईशोपनिषद् यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय है और इस प्रकार से यजुर्वेद का सार भी है। इसके मनन से निश्रेयस तथा अभ्युदय अर्थात् इह लोक सफलता और पर-लोक सिद्धि प्राप्त होते हैं, ऐसा महात्माओं और विद्वानों का मत है।

इस उपनिषद् पर अनेक भाष्य और टीकाएं उपलब्ध हैं। मैंने अपने साधारण शब्दों में विद्वानों के भाष्यों के आधार पर इसे टूटी-फूटी कविता का रूप दिया है, ताकि मेरे जैसे साधारण जन कविता अथवा गान द्वारा इसमें रुची लगा सकें, जिससे उनकी वेदों तथा उपनिषदों में श्रद्धा बढ़े।

विनीत

क्षेमचन्द

ओ३म्

ईशोपनिषद् कविता में

१ – ईशा वास्यमिदऊंसर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥

शब्दार्थ—(ईशा) ईश्वर से (वास्यम्) वास योग्य आच्छादित (इदंसर्वम्) यह सब (यत्किञ्च) जो कुछ (जगत्याम्) जगत मण्डल में (जगत्) यह संसार है। (तेन) इसलिए (त्यक्तेन) त्याग भाव से (भुंजीथा) भोग कर (मागृधः) मत लोभ कर (कस्य) किसका (स्वित्) भला (धनम्) धन है ॥

भावार्थ—ओत प्रोत प्रभु विश्व में छाया, जड़ चेतन में वह ही समाया।
त्याग भाव से जग को भोग, देय भाग न, किसी का रोक ॥

व्याख्या – सर्व व्यापक ईश को जान, जड़ चेतन में वह है समान।
सबके हृदय वह ही साजा, कण कण में वह ही प्रभु विराजा।

मन, वाणी और कर्म वह जाने, गुप्त योजना भी पहचाने ।
तद अनुकूल वह हमें ही माने, पुण्य-पाप के फल प्रदाने ।
धन एकत्र चाहे जितना करें, देय अंश न किसी का हरें ।
जो कुछ मिले प्रभु का जानें, उचित भाग को अपना मानें ।
प्राप्त किया धन बाँट के खायें, आश्रितों को भी भाग पहुँचायें ।।

२—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।

शब्दार्थ—(कुर्वन्) करते हुए (एव) ही (इह) इस संसार में (कर्माणि) कर्मों को (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा कर। (शतम्) सौ (समाः) वर्षों तक (एव) इस प्रकार (त्वयि) तुझ में (इतोऽन्यथा) इससे दूसरा (नास्ति) नहीं है रास्ता (न कर्म लिप्यते) न कर्म से लिप्त होता है (नरे) मनुष्य में ।।

भावार्थ—एक ही मार्ग रस अमर पीने का, एक ही मार्ग सौ वर्ष जीने का।
निष्काम वृत्ति से जग में रमा कर, सिद्धि मिलेगी न शंका कर ।।

व्याख्या—सौ वर्ष तक कर्म किए जा, सौ वर्ष निर्लेप किए जा ।
भोग कर्म में भेद पहचानें, भोग कदापि कर्म न मानें ।
भोग भाग्य से हमें है मिलता, कर्म भोग का बीज है बनता ।
अतः कर्म न कभी भुलावें, त्याग भाव से करते जावें ।
हों निर्लेप तो दुःख न होगा, अभ्युदय निःश्रेयस मिलेगा ।

फल की इच्छा कभी न लावें, कर्तव्य जान कर्म को निभावें।
जब कभी भोग में दु:ख भी पावें, कटे पाप यूं मन को रिझावें ॥

३—असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृता:।
तांस्ते प्रेत्याभि गच्छन्ति, ये केचात्महनो जना:।

शब्दार्थ—(असुर्या नाम ते लोका:) उन लोकों का नाम असुर लोक है, (अन्धेन तमसा वृता) और वे महान अन्धकार से घिरे हैं, (तान्) उनको (ते) वे (प्रेत्य) मर कर (अभिगच्छन्ति) जाते हैं, (ये के च) और जो कोई (आत्महन:) आत्मा का हनन करने वाले (जन:) पुरुष हैं ॥

भावार्थ—मन, वच, कर्म जो अनृत करते, वे नहीं दुख सागर से तरते।
जीवित अन्धकार में पड़ते, मरकर भी दुर्गति में सड़ते ॥

व्याख्या— आत्मा को जो न पहचाने, अन्त: करण की बात न माने।
मन वच कर्म न संयम जाने, सत्य असत्य को न पहचाने।
स्वार्थ सिद्धि को ध्येय ही मानें, केवल अपना पालन जाने।
ऐसे जन हैं असुर कहलाते, मरकर वे दुर्गति को पाते।
भोग कर्म, यहाँ भी पछताते, निज जीवन को नरक बनाते।
पापी हत आत्मा कहलाते, घोर अज्ञान पड़े भरमाते।
अत: आत्म विचारक बन, कर परमार्थ सुधारक बन ॥

४—अनेजदेकं मनसोजवीयो, नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥

शब्दार्थ—(अनेजत्) नहीं हिलता (एकम्) एक है, (मनसोजवीयः) मन से अधिक वेगवान है (नएनत्) न इसको (देवाः) इन्द्रियाँ (आप्नुवन्) प्राप्त करती है (पूर्वम्) सबसे पूर्व (अर्षत्) सबको गति देने वाला (तत्) वह ईश्वर (धावतः अन्यान) दूसरे दौड़ते हुओं को (अत्येति) लाँघ जाता है (तिष्ठत्) स्थिर रहते हुए (तस्मिन्) उसमें (अपः) जल अथवा कर्म (मातरिश्वा) जीव को धारण करने वाला वायु (दधाति) रहता है ॥

भावार्थ—अचल प्रभु वेगवान हो जाता, मन की गति से द्रुत हो जाता।
कृत कर्मों का वह ही ज्ञाता, मन के वश में कभी न आता॥

व्याख्या—अचल अडिग उस ईश को जान, फिर भी मन से अधिक वेगवान।
जहां जहाँ मन इन्द्रियों को घुमाता, वहां वहां प्रभु साक्षी हो जाता।
तदानुकूल वह भोग दिलाता, कुछ न घटाता कुछ न बढ़ाता।
मन इन्द्रियों से उसे कोई न पाता, सूक्ष्म ज्ञान से जाना जाता।
इन्द्रिय सुख के वश में न आयें, आत्म ज्ञान की शक्ति बढ़ाएं।
धर्मानुकूल स्व कर्म बनायें, पाप वृत्ति के निकट न जायें।
मातरिश्वा जैसे जन्म दिलाता, वैसे प्रभु कर्म फल दाता॥

५—तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

शब्दार्थ—(तत् एजति) वह सबको चलाता है (तन्न एजति) वह नहीं चलता है (तद्दूरे) वह दूर है (तत् उ अन्तिके) वह निश्चय से समीप है, (तत् अन्तरस्य सर्वस्य) वह इस सबके अन्दर है, (तत् उ सर्वस्यास्य) वह निश्चय से इस सबके बाहर भी है॥

भावार्थ अतिनिकट प्रभु निकटतर सृष्टि में भर पूर।
अज्ञानी अज्ञान वश इसको जानें दूर।
छोड़ें बाहर ढूंढना, मन अन्तर मुखं होये।
आत्मा में परमात्मा देखत है जन कोये॥

व्याख्या एक ही सत्ता जग में ऐसी, निकट भी है और दूर भी रहती।
प्रभु निकटतर पास खड़ा है, अन्यों के लिए दूर पड़ा है।
सबके अन्दर है वह बिराजा, बाहर देखो तो भी साजा।
अज्ञानी उसे दूर ही जानें जन्मों तक उसे नहीं पहचानें।
योगी उसे हृदय में पाते, भटक-भटक नहीं आयु गंवाते।
प्रभु सी निकट वस्तु कोई नाहीं, वह भीतर सब, जग उस माहीं।
छोड़ो बाहर ढूंढना अन्दर उसे टटोल,
निश्चय प्रभूवर मिलेंगे हृदय के पट खोल॥

६—यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु च आत्मानं ततो न विजुंगुप्सते॥

(6) शब्दार्थः—(यः) जो (तू) वास्तव में (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणियों को (आत्मनि एवं) अपनी आत्मा जैसा ही (अनुपश्यति) अनुभव करता है, (सर्वं भूतेषू च्) और सब प्राणियों में (आत्मनम्) अपने जैसी आत्मा को अथवा परमात्मा को देखता है (ततः) तब (न विजुगुप्सते) कोई संशय नहीं करता हैं॥

भावार्थ आत्मवत् जो सबको जानें, सब में स्व सम जीव पहिचानें।
प्रभु की सत्ता सबमें मानें, निश्चय से वे मुक्ति पद भानें॥

व्याख्या जो जन प्रभु की आज्ञा मानें, कर्त्ता धर्त्ता उसको जानें।
सब में उसकी महिमा जानें, उससे बाहर कुछ न मानें।
उसके कार्य उपकार ही जानें, अपने को संतोषी जानें।

दु:ख सुख में कभी न अकुलावें, ईश से हर क्षण प्रेरणा पावें।
आत्मवत् सभी प्राणी जानें, भोग योनियां भी पहचानें।
अन्य के हर्ष में हर्ष मनावें, शोकातुर का साहस बढावें।
ऐसे भाव जो मन में लावें, वह ही श्रेष्ठ मार्ग को जावें।।

७—यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवा भूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्तः ।।

शब्दार्थ—(यस्मिन्) जिस अवस्था में (विजानतः) ज्ञानी पुरुष को (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणीमात्र (आत्मा एव अभूत) आत्मा ही हो जाते हैं, (तत्र) वहां या उस अवस्था में (कः मोहः) क्या मोह (कः शोकः) क्या शोक,(एकत्वं) एकत्व को (अनुपश्यत्) अनुभव करता है।।

भावार्थ—आत्मवत् सब जीवों से करते जो जन प्यार।
शोक लोभ दु:ख मोह तज पाते एक ओंकार।।

व्याख्या—अपने जैसा सबको जानें, स्व अवांछित न कभी प्रदानें।
जैसा हित हम अपना चाहें, ऐसा अन्यों को पहुंचायें।
राग द्वेष जो न अपनायें, ऐसे मानुष सभी को भायें।
सुख में राग कभी न लावें, क्षणिक है सुख न पाप कमावें।
द्वेष भाव हर समय दबावें, दु:ख हेतु न इसे बढ़ावें।
लोभ ही सारे पाप कराता, अतः पाप का बाप कहलाता।
समता का सब जीवन बनावें, न शोकातुर न इतरावें।।

८—स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरऊंशुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यद्धाच्छा
श्वयतीभ्यः समाभ्यः।।

शब्दार्थ –(सपरि अगात्) वह परमात्मा सर्वत्र व्यापक है (शुक्रम्) शक्तिशाली वीर्यवान, (अकायम्) कारण, सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर रहित, (अव्रणाम) छिद्र रहित, (अस्नाविरम्) नस नाड़ी रहित (शुद्धम्) पवित्र, (अपापविद्धम्) पाप से न जुड़ने वाला, (कविः) सर्वज्ञ, (मनीषी) मनों का ज्ञाता, (परिभूः) दुष्ट संहारक, (स्वम्यभूः) उत्पन्न न होने वाला है, (याथात-थ्यतः यथार्थ भाव से, (शश्वतीभ्यः समाभ्यः) अनादि काल से प्रजाओं के लिये (अर्थान्) सब पदार्थों (व्यद्घात्) बनाया ।।

भावार्थ शुक्र अकाय शुद्ध प्रभु, नस नाड़ी विन जान ।
त्रुटि रहित कभी पाप न करता जगदीश्वर भगवान ।
स्वयंभू अनादि सनातन मन वृत्ति ले पहचान ।
दुष्ट पापियों का दण्ड दाता दे वेदों का भी ज्ञान ।।

व्याख्या —शुक्र शीघ्रगति वीर्यवान, विन शरीर अकाय भगवान ।
पूर्ण ब्रह्म अव्रण महान, अस्नोवर नाड़ी बिन जान ।
शुद्ध पवित्र बिन पाप विधाता, तभी तो अपापविद्ध कहलाता ।
कवि सर्वज्ञ मनीषी ज्ञाता, परि अगात व्यापक हो जाता ।
परिभूः दुष्टों का दण्डधारी, स्वयंभूः अनादि आधारी ।
शाश्वत जग निर्माता विधाता, अर्थ ज्ञान का वह ही प्रदाता ।
ऐसे ब्रह्म को हम सब ध्यावें, उससे ज्ञान विज्ञान को पावें ।।

९ —अन्धतमः प्रविशन्ति, येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ, विद्यायाँ रताः ।।

शब्दार्थ —(अन्धतमः) गाढ़ अन्धकार में, प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं (ये) जो (अविद्याम्) अविद्या को, सांसारिक ज्ञान को (उपासते) पूजते हैं (ततः) इससे, (भूय इव) अधिक होकर भी (तमः) अन्धकार अज्ञान में हैं, (ते उ) वे जो (विद्यायाम्) आध्यात्मिक ज्ञान में (रताः) लगे हैं ।।

भावार्थ—सत्य ज्ञान को जो नहीं पाते, वे तो वृथा जन्म गवाते ।
ज्ञान पाय सत्य कर्म न करते, वे तो घोर नरक में पड़ते ।।

व्याख्या--अविद्वान हैं वे कहलावें, शास्त्र त्याग लिख पढ़ जो जावें ।
नित्य अनित्य का भेद न पावें, अमर शरीर व्यवहार दिखावें ।
अशुद्ध कर्म को शुद्ध कर जानें, जीव को वे परमात्मा मानें ।
दुख विषयों को सुख से विचारें इन्द्रिय भोग में दुख न निहारें ।।
पढ़े वेद विद्वान कहलावें, स्व चरित्र फिर भी न बनावें ।
करें उपदेश न कर्म सुधारें, फिरें संसारिक सुख में मारे ।
वे तो महा नरक में जाते, ज्ञाता हो कुछ कर न पाते ।।

१०—अन्यदेवाहुर्विद्ययान्यद-हुरविद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां येन स्तद्विचचक्षिरे ।।

शब्दार्थ—(अन्यत् एव) और ही (आहुः) कहते हैं (विद्यया) ब्रह्मज्ञान से, (अन्यत्) और (अविद्यया) सांसारिक ज्ञान या कर्म से (आहुः) कहते हैं, (इति) ऐसा (धीराणां) विद्वानों को (सुश्रम) सुना है (ये नः) जो हमें (तत्) उस विषय का (विचचक्षिरे) उपदेश कहते हैं ।।

भावार्थ—ईश प्राप्ति दो मार्ग बताए, विद्या अविद्या बे कहलाए ।
विद्या से ब्रह्म ज्ञान हो जाता, कर्तव्य कर्म अविद्या से भी आता ।।

व्याख्या—ब्रह्म प्राप्ति दो मार्ग महान, आप्त जन यह करें बखान ।
कई कहते विद्या से ही मुक्ति, अन्य कहें अविद्या से भी तृप्ति ।
ब्रह्म ज्ञान विद्या में आता, लोक कर्म अविद्या में जाता ।
ब्रह्म ज्ञान जो जन पा जाते, दैवी कर्म स्वभाव बनाते ।
सांसारिक जो कर्म निभाते, हो निर्लेप न कभी भरमाते ।
सत्य भागी वे भी हो जाते, श्रेष्ठ कर्म से पदवी पाते ।
दो मार्ग हम किसे अपनाएं ऋषिवर गुत्थी यूं सुलझाएं ।।

११ – विद्यां चाविद्यां च, यस्तद्वेदोभयं सह
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यायाऽमृतमश्नुते ।।

शब्दार्थ (विद्याम्) ज्ञान को (च) और (अविद्याम्) कर्म या सांसारिक ज्ञान (यः) जो (तत्) उसको (वेद) जानता है (उभयं सह) दोनों को इकट्ठा (अविद्यया) वह कर्म या सांसारिक ज्ञान से (मृत्युम्) मृत्यु को (तीर्त्वा) पार करके, (विद्यया) ब्रह्म ज्ञान से (अमृतम्) अमृत या मुक्ति को (अश्नुते) प्राप्त करता है ।।

भावार्थ—विद्या अविद्या दोनों जानें, दोनों के गुण भेद पहचानें ।
अविद्या भौतिक सिद्धि दिलाती विद्या अमर पद पहुंचाती ।।

व्याख्या — अविद्या, जगत ज्ञान सिखाती,आविष्कार भौतिक भी कराती ।
सांसारिक सुख इससे आते, ब्रह्म ज्ञान जो सुगम बनाते ।
विद्या ब्रह्म ज्ञान बतलाती, अविद्या बिन यह कठिन हो जाती ।
ब्रह्म वाद हम पा नहीं सकते, जब तक देह स्वस्थ नहीं रखते ।
ब्रह्म ज्ञान तब तक नहीं मिलता, जब तक सृष्टि ज्ञान नहीं बढ़ता ।
दोनों का समन्वय चाहिये, उससे जीवन सफल बनाइये ।
जो जन केवल एक अपनाते, वे मार्ग को कठिन बनाते ।।

१२ अन्धं नमः प्रविशन्ति, येऽसम्भूतिमुपासते !
ततो भूय इव ते तमो य उसम्भूत्यां रताः ।।

शब्दार्थ—(अन्धतमः) घोर अन्धकार में (प्रविशन्ति) जाते हैं (ये) जो (असम्भूतिम्) अव्यक्तवाद को (उपासते) अपनाते हैं, (ततः) इससे (भूय इव) अधिक भी (ते) वे (ये उ) यह जो (सम्भूत्यां) समाजवाद (रताः) आसक्त हैं ।।

भावार्थ—समष्टि व्यष्टि जो भेद न पावें, अथवा एक ओर रह जावें ।
वे न कभी सत्य को पावें, वृथा अपना जन्म गवावें ।।

व्याख्या—विकृत प्रकृति व्यष्टि कहलाती, सत, रज, तम के भेद बनाती।
विकृत दशा में जीव जब आता, भोग कर्म मे जन्म बिताता ।।
पुन्य पाप के कर्म बनाता, तद अनुकूल वह आता जाता ।
अवस्था साम्य, समष्टि कहलाती, सब सृष्टि तब लय हो जाती ।
जीव सामाजिक कर्म जब करता, सम्भूति या व्यष्टि विचरता
दोनों रुप महत्व हैं रखते, परन्तु अकेले कभी न फलते ।
अत: जो एक वाद रह जाते वे नहीं जीवन सफल बनाते ।।

१३—अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ।।

शब्दार्थ—(अन्यत् एव) और ही (आहु: कहते हैं (सम्भवात्) समाजवाद या व्यष्टिवाद से (अन्यत् आहु) अन्य कहते हैं (असम्भवात्) व्यक्ति या समष्टिवाद से (इति) ऐसा (शुश्रुम) सुना हैं(धीरणाम्)विद्वानों को (ये) जो (न:) हमे (विचचक्षिरे) व्याख्या देते हैं ।।

भावार्थ—समष्टि सेवा से कई ईश को पाते कई आत्म उद्धार अपनाते ।
दोनों से है परम पद मिलता विद्वत गण ऐसे बतलाते ।।

व्याख्या—सामाजिक सेवा सच्ची भक्ति, इससे मिलती दैवी शक्ति ।
जो जन अन्यों को हैं उठाते, जग की समष्टि उन्नति चाहते ।
कर नेकी जो नदी में बहाते, प्रभु कार्य में हाथ बटाते ।
जन सेवा के जो व्रतधारी, वे हैं मुक्ति के अधिकारी ।
कई ऋषि अन्यत मार्ग दर्शाते, असम्भूति वे इसे बतलाते ।
जो हैं आत्मज्ञान बढाते, ध्यान मग्न ब्रह्मलीन हो जाते ।
कर्म अकर्म में मन न लाते, केवल वे ही मुक्ति पाते ।।

१४—असम्भूति च बिनाशं च, यस्तद्वेदोभयं सह ।
विनाशेन मृत्यु तीर्त्वा ऽसम्भूद्योमृतमश्नुते ।।

शब्दार्थ - (सम्भूतिम्) नाशवान जगत अथवा व्यष्टि रूप सामाजिक स्थिति और (विनाशम्) कारणरूप समष्टि प्रकृति अथवा व्यक्तिक ज्ञान को (च) (यः) जो (तत्) उस कार्य को (वेद) जानता है (उभयम् सह) दोनों को साथ साथ, (विनाशेन) समाज सेवा से (मृत्युम्) मृत्यु या दुःख को (तीर्त्वा) पार करके (सम्भूत्यां) व्यक्तिक जीवन से या ज्ञान से (अमृतम्) अमृत या सुख को (अश्नुते) प्राप्त होता है ॥

भावार्थ व्यक्ति समाजवाद जो जानें दोनों का महत्व भी जानें ।
दोनों का समन्वय करके मृत्यु त्याग अमर पद भावें ॥

व्याख्या ज्ञान कर्म दोनों अपनाएं मिलकर यह मुक्ति को दिलाएं ।
व्यक्तिवाद से ही जीव न बढता, हो सामाजिक उन्नति करता ।
भोग कर्म दोनों अपनाएं साथ अध्यात्मिक भाव लगाएं ।
ज्ञान मार्ग हमें दिशा दिखाता, सेवा कर्म उसे सफल बनाता ।
कारण रूप प्रकृति भी जानें, कार्य रूप सृष्टि भी मानें ।
क्रम अनुकूल प्रकृति बदलती, परन्तु आदि भाव नहीं तजती ।
समन्वय दोनों का सुख देता, अन्त में यह मृत्यु हर लेता ॥

१५—हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये ॥

शब्दार्थ –(हिरण्यमयेन पात्रेण) सोने के ढकने से (सत्यस्य) सत्य का (मुखं) मुख (अपिहितम) ढका हुआ है (तत त्वम्) उसको तु (पूषन्) हे पालक प्रभु (सत्य धर्माय दृष्टये) सत्य धर्म के देखने के लिए (अपावृणु) हटा दे ॥

भावार्थ स्वर्णपात्र इन्द्रिय वृत्तियों से सत्य ज्ञान है ढका हुआ ।
त्यागें हम पापों विषयों को ब्रह्मज्ञान है सटा हुआ ॥

व्याख्या- इन्द्रिय विषय लगे स्वर्ण समान भोगे प्राणी प्रिय इन्हें जान ।

इन्द्रिय जाल में रहें भरमाते, करें भोग नव कर्म कमाते ।
जन्मे, मरण जन्म रह पाते, आवागमन रहें आते जाते ।
हे जीव! तु परम पद जान, श्वास प्रश्वास में ओउम् बखान ।
शुद्ध व्यापक ईश को जान, तत्वों में नभ जैसे महान ।
अन्तरिक्ष सम प्रभु है छाया, फैली सब जा उसकी माया ।
ओउम् नाम का जाप किया कर, प्रेम सुधा रसपान किया कर ॥

१६—यूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्-समूह ।
तेजो यत्ते रुपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः
सोऽहमस्मि ॥

शब्दार्थ—(पूपन्) हे पालक! (एकर्षे) एक महान ऋषि (यम) नियामक (सूर्य) प्रकाश स्वरूप (प्राजापत्य) प्रजा के स्वामी (व्यूह रश्मीन्) चकाचौंध करने वाली माया रुप किरणों को दूर कर दे, (समूह) इकट्ठा कर दे, (यत्ते) जो तेरा (कल्याणतमम्) अत्यन्तकल्याणकारी (रूपम्) रूप है (तत्ते) उस तेरे रूप को (पश्यामि) देखता हूँ (यः) जो (असौ असौ) वह वह अर्थात् शक्तियों में (पुरुषः) पुरुष है (सः) वह (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ ॥

भावार्थ—तेजवान कल्याणरुप प्रभू ध्यान आपका धरते हैं ।
आपके चरण शरण में आकर इन्द्रिय संयम करते हैं ॥

व्याख्या—एक ही प्रभु नियामक पालक, वह ही स्वयंभू प्रकाशक मालिक ।
तेजवान ज्योति का दाता, सत्य कल्याणी मार्ग प्रदाता ।
दत्तचित आपका ध्यान है करते, तब चरनों में हम हैं पड़ते ।
चितवृत्ति का संयम सिखलाओ, मन भटकत है हमें बचाओ ।
इन्द्रिय दमन सभी हम सीखें, मन को शमन भाव से जीते ।
प्रभु तुम महा पुरुष कहलाता, हम अल्पज्ञतू पूर्ण ज्ञाता ।

हमें अनुगामी अपना बनाओ, भव सागर में पार लगाओ ।।

१७ वायुरनिलम मृतमथेदं भस्मांन्त शरीरम् ।
ॐ क्रतो स्मर कृतं स्मर, कृतो स्मर कृतं स्मर ॥

शब्दार्थ –(वायु) प्राण (अनिलम्) अग्नि (अमृतम्) अमर है (अथ) इसके बाद अब (इदम्) यह (शरीरम्) शरीर (भस्मान्तं) अन्त में भस्म होने वाला है (कृतम्) किये हुए को (स्मर) यादकर (क्रतोस्मर) अपने स्वरूप को स्मरण कर (क्रतो) हे कर्म करने वाले (ओउम) ओम का स्मरण कर ।

भावार्थ —पांच तत्त्व शरीर विनाशी अमृतरूप जीव अविनाशी।
किये कर्म अपना फल लाते कर्म गति तथा मुक्ति दिलाते ।।

व्याख्या —पांच तत्व बनी देह असार छूटे मिले यह बारम्बार।
तत्व महा तत्व मिल जाते जन्में तो फिर तनु दिलाते।
जीव अमर इस देह में आता, कृत कर्मों का फल यह पाता।
मानुष देह में ओम विचारें निष्काम कर्मों से स्व को सुधारें।
पश्चाताप करें कुकर्मों का, योजनाबद्ध हों सुकर्मों का।
अमूल्य आयुकाल को जाने अपनी आत्मा को पहचानें।
वर्तमान भविष्यत काल जपें ओम रहें जिस हाल।

१८--अग्ने नय सुपथा राये, अस्मान्विश्वानि देव, वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुशरा मेनो, भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम ॥

शब्दार्थ—(अग्ने हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन्, (अस्मान्) हमको (राये) ऐश्वर्य के लिये (सुपथा) अच्छे मार्ग से (नय) ले चल । (देव) हे देव (विश्वानि वयुनानि) सब अच्छे कर्मों को (विद्वान्) जानते हुए (जुहराणाम् एनः) सब पापों को (युयोधि) हटा दो (ते) आपके

(ये लिभूयिष्ठाम्) बहुत, (नमउक्तिम्) नमस्कार वचन द्वाग (विधेम्) सेवन करें ।।

भावार्थ—

सुखस्वरूप प्रभु अग्नि देव जी सुपथ हमें लगा दीजे ।
ज्ञान विज्ञान को प्राप्त करें हम उत्तम राज्य वना दीजे ।।
तजें कुटिलता पाप कर्म को अपनी शरण लगा लीजे ।
अनुयायी हैं शरण आपकी आनन्द मार्ग दिखा दीजे ।।

व्याख्या.. हे दयामय हम सवों को शुद्धताई दीजिये,
दूर करके हर बुराई को भलाई दीजिये ।
ऐसी कृपा और अनुग्रह हम पर हो परमात्मा,
हों सभी जन इस जगत के सबके सब धर्मात्मा ।
हो उजाला सब के मन में ज्ञान के प्रकाश से,
और अन्धेरा दूर सारा हो अविद्या नाश से ।
खोटे कर्मों से बचें और तेरे गुण गावें सभी,
छूट जावें दुःख सारे सुख सदा पावें सभी ।
सारी विद्याओं को सीखेंज्ञान से भरपूर हों ।
शुभ कर्म में होवें तत्पर दुष्ट गुण सब दूर हों,
अच्छी संगत में रहें और वेद मार्ग पर चलें,
तेरे ही होवें उपासक और कुकर्मों से बचें ।
कीजिये हम सबका हृदय शुद्ध अपने ज्ञान से,
भान 'महता' के बढ़ावें सब में भक्ति दान से ।।

पुस्तक मिलने का पता :

- आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा,
  मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली
- आर्य समाज,
  निज्जामुद्दीन, नई दिल्ली
- खेम चन्द महता,
  सी-39, निज्जामुद्दीन-पूर्वी, नई दिल्ली

Bright Printers, Jain Mandir Gali, Gandhi Nagar, Delhi-31